P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 VOL-6* ISSUE-8* (Part-1) April- 2019
E: ISSN NO.: 2349-980X **Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika**

योगशास्त्रोक्त पञ्चधाक्लेशः एक विमर्श

सुधांशु कुमार सारंगी
सह प्राध्यापक,
विश्वेश्वरानन्द बिश्वबन्धु संस्कृत एवं भारत–भारती अनुशीलन संस्थान,
पंजाब विश्वविद्यालय,
होशियारपुर, भारत

सारांश

समस्त लोक निरतिशयानन्द प्राप्ति को ही परमप्रयोजन के रूप से स्वीकार करता हैं। परन्तु उसकी प्राप्ति के विषय में विद्वानों में पर्याप्त मतभेद है। इनमें से योगज्ञ केवल योगसिद्धि से ही उसकी प्राप्ति को मानता है। क्योंकि योगसिद्ध होने पर ही वह साधक जरा–मरण–पुनर्जन्मादि दुःखों से रहित हो सकेगा। पुनर्जन्मादि में अभुक्त कर्म के फल ही कारण बनते हैं। यह कर्म चाहे शुभ हो अथवा अशुभ हो। इन शुभाशुभ कर्मजन्य शुभाशुभ फल की प्राप्ति होती है। ये कर्म भी अविद्यादि क्लेशजनित है। अतः योगसिद्धि हेतु महर्षि पतञ्जलि ने त्रिविध साधकानुरूप त्रिविध साधन का उल्लेख किया है। इन अधिकारियों में से मध्यम अधिकारी हेतु उद्दिष्ट साधन क्रियायोग के प्रमुख फलों में से क्लेशों का तनुकरण एक प्रमुख फल है। क्योंकि क्लेश ही समस्तकार्यों के मूलकारण है। इन क्लेशों की निवृत्ति अपेक्षित है। प्रस्तुत शोधलेख अविद्यादि के ज्ञान एवं उनकी निवृत्ति का विवेचन करता है।

मुख्य शब्द : क्लेश, अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष, अभिनिवेश, भाष्य,विपर्यय, अनात्म, विद्या, अविद्या, बुद्धि,पुरुष स्वस्वामिभाव, आत्म, क्रियायोग, जरा, मरण, पुनर्जन्म।

प्रस्तावना

समस्तलोक निरतिशयानन्दप्राप्ति को ही परमप्रयोजन के रूप से स्वीकार करता हैं। परन्तु उसकी प्राप्ति के विषय में विद्वानों में पर्याप्त मतभेद है। इनमें से योगज्ञ केवल योगसिद्धि से ही उसकी प्राप्ति को मानता है। क्योंकि योगसिद्ध होने पर ही वह साधक जरा–मरण–पुनर्जन्मादि दुःखों से रहित हो सकेगा। पुनर्जन्मादि में अभुक्तकर्म के फल ही कारण बनते हैं। यह कर्म चाहे शुभ हो अथवा अशुभ हो। इन शुभाशुभ कर्मजन्य शुभाशुभफल की प्राप्ति होती है। ये कर्म भी अविद्यादि क्लेश जनित है। अतः योगसिद्धि हेतु महर्षि पतञ्जलि के त्रिविध साधकानुरूप त्रिविध साधन का उल्लेख किया है। इन अधिकारियों में से मध्यम अधिकारी हेतु उद्दिष्ट साधन क्रियायोग के प्रमुख फलों में से क्लेशों का तनुकरण एक प्रमुख फल है। क्योंकि क्लेश ही समस्त कार्यों के मूलकारण है। इन क्लेशों की निवृत्ति अपेक्षित है। अब यह प्रश्न उठता है कि क्लेश क्या है ? क्लेश का स्वरूप क्या है ? क्लेश कितने हैं ? इसके समाधान में यह कहा जाता है कि – क्लिश्नान्ति इति क्लेशाः। अर्थात् जो कष्ट अथवा दुःख प्रदान करते हैं, वे क्लेश कहे जाते हैं। ये क्लेश पाँच प्रकार के कहे गये हैं। जैसे – अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष तथा अभिनिवेश।[1]

अध्ययन का उद्देश्य

समस्तलोक जरा–मरण–पुनर्जन्मादि दुःखों से मुक्त होना चाहता है। परन्तु अविद्यादि क्लेशों के रहने पर यह सम्भव नहीं है तथा अविद्यादि के निवृत्ति हेतु उनका सम्यक् ज्ञान अपेक्षित है। क्योंकि अविद्यादि ये पाँचों क्लेश व्याधि आदि की तरह योग में प्रतिबन्ध सृष्टि करते हैं। इन से चित्त विक्षिप्त अवस्था को प्राप्त कर जाता है। अतः ये योग में विरोधीतत्त्व है। इनके तनुत्व होने पर ही विवेकख्याति उत्पन्न होता है। इस प्रकार यह क्रियायोग के दृष्ट एवं अदृष्ट फल के प्रत्यायक होता है। क्रियायोग के अनुष्ठान से चित्तशुद्धि योगी का होता है। और इसके फलस्वरूप अधर्मादि के कारणों की तनुता हो जाने से अविद्यादि भी क्षीणभाव हो प्राप्त हो जाते हैं। क्योंकि अस्मिता, राग, द्वेष आदि के प्राबल्य अवस्था में क्रियायोग सम्भव नहीं हो सकता है। यदि वा कथञ्चित् किसी कारणवश होता भी है तो वह आंशिकमात्र होता है। अतः क्रियायोग अपनी सिद्धि में क्लेशों के तनूकरण का सम्पादन करता है।जिससे साधक क्लेशों के सायुज्य से मुक्त होकर योगमार्ग पर अग्रसर हो जाता है।

अविद्या

अनित्य, अशुचि, दुःख एवं अनात्म पदार्थों में नित्य, शुचि, सुख तथा आत्मत्व का ज्ञान करना अविद्या कहलाता है। कथञ्चित् यह अविद्या विपर्ययात्मक ज्ञान भी कहलाती है। अतः व्यास ने कहा है कि :–

''क्लेशाः इतिपञ्चविपर्ययाः इत्यर्थः।''

इस अविद्या के स्वरूप को स्पष्ट करने के लिए सूत्रकार ने कहा है कि :–

''अनित्याऽशुचिदुःखाऽनात्मसु नित्यशुचिसुखात्म–ख्यातिरविद्या।''[3]

अतः अविद्या चार प्रकार के ज्ञानों को उपस्थित करता है।

जैसे–

क0 अनित्य पदार्थों में नित्य का ज्ञान।
ख0 अपवित्र वस्तु में पवित्रता का बोध।
ग0 दुःख में सुख की अनुभूति।
घ0 अनात्मा में आत्मत्व का ज्ञान।

क0 अनित्य पदार्थों में नित्य का ज्ञान :–

अनित्य पदर्थों में नित्य का ज्ञान होना अविद्या कहलाती है। श्रीविज्ञानभिक्षु के अनुसार अनित्य कालनिष्ठ अभाव के प्रतियोगित्वरूप असत्त्वहै। जैसे कि वार्त्तिक में कहा गया हैकि :–

''अनित्यत्वमसत्त्वंकालनिष्ठाभावप्रतियोगित्वमिति।''[4]

इस संसार में पृथिव्यादि समस्त प्रपञ्च कालनिष्ठ अभाव का प्रतियोगीस्वरूप है। अतः यह समग्र प्रपञ्च अनित्य है। इनअनित्य पदार्थों में जो विपर्यय रूप नित्यत्व बोध है, वह अविद्या ही कहलाती है। जैसे – पृथिवी नित्य है। चन्द्र तथा तारों सहित द्युलोक नित्य है, देवगण अमर है आदि। क्योंकि इन की अनित्यता श्रुतिसिद्ध है। जैसे कहा गया है–

''वाचाऽरम्भणंविकारोनामधेयंमृत्तिकेत्येवंसत्यम्।''[5]

ख0 अपवित्र वस्तु में पवित्रता का बोध :–

अपवित्र वस्तु में पवित्रता का ज्ञान करना अविद्या है। जैसे इस शरीर को अपवित्र मानकर उसमें स्नानादि से पवित्रता का ज्ञान करना। भगवान व्यास ने इस शरीर को अपवित्र माना है। उन्होंने भाष्य में एक कारिका का अवतारण करते हुए शरीर की अपवित्रता का प्रमाण प्रस्तुत किया है। जैसे :–

''स्थानाद् बीजादुपष्टम्भान्निःस्यन्दान्निधनादपि।
कायमाधेयशौचत्वात्पण्डिताह्यशुचिं विदुः।।''

अर्थात् अत्यन्त अपवित्र माता की उदररूप स्थान से उत्पन्नहोने के कारण, रजोवीर्यरूप दूषित उपादान के कारण, रक्तमांसादि आश्रय के कारण, मल–मूत्रादि प्रवाह के कारण, मृत्यु के भी कारण तथा बाह्य जलादि से पवित्रता का आरोपकरने से विद्वान् शरीर को अपवित्र मानते हैं।

श्रीविज्ञानभिक्षु ने इस अशुचिता पूर्ण शरीर में होने वाला शुचित्वबोध को अविद्या कहा है। जैसे अतितुच्छ किसी स्त्रीशरीर और अतिधवलचन्द्रमा के मध्य कोई समानता नहीं है। परन्तु यह कल्पित होता है कि जैसे यह मनोहारिणी नायिका नूतन चन्द्रमा की भाँति अमृत के अंशों से निर्मित हुई है। वस्तुतः इन दोनों में कोई साधर्म्य नहीं है। यह केवल भ्रम ही है। अतः नायिका के अपवित्र शरीर में जो पवित्रता का बोध होता है, वह विपर्यय है। और यह विपर्ययात्मक ज्ञान ही अविद्या कहलाता है।

ग0 दुःख में सुख की अनुभूति :–

दुःखपूर्ण पदार्थों की प्रतीति सुखस्वरूप से बोध होना तृतीय प्रकार की अविद्या है। यह समग्र प्रपञ्च दुःखात्मक है। परन्तु सामान्य जन के प्रति पुण्यजन्य ह्लाद फल तथा पापजन्य परिताप फल प्राप्त होता है। परन्तु योगी के प्रति दोनों ही दुःखात्मक परिताप फल ही है। क्योंकि चाहे पुण्य हो अथवा पाप हो, उन कर्मफल जन्य विपाक से भव–भवान्तर की प्राप्ति होती रहेगी। क्योंकि सूत्र में कहा गया है कि :–

''परिणामतापसंस्कारदुःखैर्गुणवृत्तिविरोधाच्च दुःखमेव सर्वं विवेकिनः।''[6]

अतः यह समग्र प्रपञ्च दुःखपूर्ण ही है। उसके होने में ही साधक सतत प्रयासरत रहता है। अतः इस दुःखपूर्ण संसार में जो सुखबोध होता है वह अविद्या है।

घ0 अनात्मा में आत्मत्व का ज्ञान :–

अनात्मपदार्थों में आत्मख्याति अविद्या कहलाती है। बाह्य शरीर के साधनभूत पुत्रादि में अहंबुद्धि करने से विषयभोगों के अवच्छेदक रूप से अन्तःकरण के साधनभूत शरीर में होने वाली अहंबुद्धि तथा भोग्य होने से पुरुष के साक्षात् उपकरण भूत अन्तःकरण में होने वाली अहं प्रत्यय अनात्मा रूप में आत्मबुद्धि अविद्या कहलाती है। इस अनात्म तत्त्व में आत्मख्याति रूप अविद्या पर्यवसित यह समग्र प्रपञ्च है। क्योंकि ''अहंकर्त्ता'' इत्याकारक अभिमान धर्माधर्म की उत्पत्ति द्वारा सम्पूर्ण जगत् का कारण है। पञ्चशिखाचार्य भी इसी बात का समर्थन किया है। जैसेः–

''तथैतदत्रोक्तम्–व्यक्तमव्यक्तं वा सत्त्वमात्मत्वेना–भिप्रतीत्य तस्य सम्पदमनुनन्दत्यात्मसम्पदंमन्वानस्तस्य व्यापदमनुशोचत्यात्मव्यापदंमन्यमानः स सर्वोऽप्रतिबुद्ध इति।''

न विद्या अविद्या– यह नञ् तत्पुरुष समास निष्पन्न अविद्या यहाँ पर ग्रहणीय नहीं है। क्योंकि इस प्रकार से समासित पद को ग्रहण करने पर विद्या भी किसी के प्रतियोगिकज्ञान से बोधित होगा। और योगदर्शन में अभाव का अंगीकार भी नहीं किया गया है। यह तो अधिकरणस्वरूपक ही है। यदि वा हम इस प्रकारक नञ् समासान्त अविद्या का स्वीकार कर लेते हैं तो अविद्या अस्मितादि क्लेशों का विनाश करने वाली सिद्ध हो जाएगी, न कि उनका कारण के रूप से।

पुनः अविद्यमानाविद्या यस्यामिति अविद्या– इस विग्रह जन्य अविद्या का भी ग्रहण नहीं कर सकते हैं। क्योंकि इससे अविद्या का विद्यारहितत्व तो सिद्ध हो जाएगा किन्तु उसकी भावात्मकता की सिद्धि नहीं हो पाएगी। जिससे कि क्लेशादि के कारण इसमें घटित नहीं हो पाएगी।

वस्तुतः निषेध की दो विधा शास्त्रो में गृहीत है। जैसे – प्रसज्य प्रतिषेध और पर्युदास। इन दोनों में से प्रसज्य प्रतिषेध का ग्रहण हम नहीं कर सकते हैं। क्योंकि इससे विद्या के सदृश किसी भाव पदार्थ की सिद्धि नहीं हो पाएगी। तथा अविद्या से क्लेशों की उत्पत्ति भी अनुत्पन्न हो जाएगी। वाचस्पति ने भी कहा है कि :–

''तत्र पूर्वपदार्थप्रधानत्वेविद्यायाः प्रसज्यप्रति–षेधोवगम्येत, न चास्याः क्लेशादिकारणत्वम्।''[7]

परन्तु पर्युदास समासान्त में भावात्मक पदार्थ की प्रधानता विद्यमान रहती है। क्योंकि जैसे अमित्र पद का तात्पर्य मित्र का अभाव अथवा मित्रमात्र नहीं है, तथा अगोष्पद का तात्पर्य गोष्पद का अभाव अथवा गोष्पदमात्र नहीं है, उसी प्रकार अविद्या भी प्रमाण का अभाव अथवा प्रमाणमात्र नहीं है। अपितु विद्याविपरीत भावरूप वस्त्वन्तर ही है। वस्त्वन्तर के कारण इसकी क्लेशादि कारणता भी रहती है। इसलिए श्रीविज्ञानभिक्षु ने वार्त्तिक में कहा है किः–

''दृष्टान्तं विभजते– यथा नामित्र इति। न मित्राभाव इति। अत्राभाव शब्देन संसर्गोन्याभावौग्राह्यौ। न मित्रमात्रमिति। नास्तिमित्रं यस्मादिति व्युत्पत्त्या केवलमित्रमित्यर्थः। किंतु तद्विरुद्धौ मित्रविरुद्ध इत्यर्थः। तथा च निरुढ़लक्षणेतिभावः। किन्तुदेश एवेति। विपुलोदेश– विशेषोऽगोष्पद इति परिभाषितः। प्रमाणं विद्याज्ञानान्तरमिति। एतेनाविद्याशब्दस्य ज्ञानविशेषे रुढ़त्वावधारणादाधुनिक– वेदान्तिनामन्यार्थत्वोपवर्णनंस्वतन्त्र्यमात्रमवधेयम्।''[8]

इसी को अधिक स्पष्ट करते हुए कह गया है कि :–

''वस्तुतो अयथार्थे यथार्थबुद्धिः, यथार्थेऽयथार्थबुद्धिः तदभाववत्सु तद्वत्ताबुद्धिः, तद्वत्सुतदभाववत्ताबुद्धिः, भिन्नयोरभेदबुद्धिः, अभिन्नस्य भेदबुद्धिरित्यादिकमनविद्या. स्वरूपंबोध्यमिति।'' (स्वमिनारायणभाष्यम्, 2/6)

अविद्या के नष्ट होने पर अस्मितादि का भी नाश हो जाता है। यह अविद्या आगे कहे जाने वाले अस्मितादि क्लेशों की प्रसवभूमि है। अस्मिता में बुद्धि और पुरुष में अत्यन्ताभेद के कारण भ्रमात्मक ज्ञान। राग के कारण निर्लिप्त आत्मा में अनात्मभूत सुख संस्कार का संगज्ञान। द्वेष के कारण निर्लिप्त आत्मा में अनात्मभूत दुःख संस्कार का संगज्ञान तथा अकर्त्ता आत्मा में कर्त्तृत्वाभिमान है।

अस्मिता

आत्मा एवं अनात्मा में जो अभेदभ्रम प्राप्त होता है उसे अस्मिता कहा जाता है। अतः सूत्रकार ने कहा है किः–

''दृग्दर्शनषक्त्योरेकात्मतेवास्मिता।''[9]

बुद्धि और पुरुष दोनों अत्यन्त विप्रकृष्ट धर्मवाले हैं। इन दोनों का भोग्यत्व तथा भोक्तृत्व रूप वैधर्म्य भी अत्यन्त स्फुट है। यदि दोनों में भिन्न धर्मता का ज्ञान हम नहीं स्वीकार करेंगे तो कर्म–कर्त्तृ विरोध उपस्थित होगा। इस प्रकार परस्पर अत्यन्त भिन्न स्वरूपवाले भोग्य बुद्धि और भोक्ता पुरुष का जब अविभागात्मक ज्ञान उत्पन्न होने लगता है तब अस्मिता क्लेश प्राप्त हो जाता है। और भी ''योऽहं सुखीसोऽहं तदनुभविता'' इस प्रकार की एकाकारता बुद्धि तथा पुरुष के अभेदापन्न होने पर ही लोक में भोग व्यवहार होता है।

अविद्या और अस्मिता के मध्य सूक्ष्म अन्तर को दर्शाते हुए श्रीविज्ञानभिक्षु ने कहा है कि – अविद्या की अवस्था में होने वाला अभेदभ्रम भेदाभेद घटित होता है। जबकि अस्मिता में यह अभेदभ्रम आत्यन्तिक रूप से अभेद घटित होता है, न कि भेदाभेद घटित। क्योंकि अविद्या बुद्ध्यादि जड़ पदार्थों में सामान्य रूप से होने वाली अहं प्रतीति है। तथा यह अहं प्रतीति बुद्धि और पुरुष के भेदाभेद ज्ञान से उत्पन्न होता है क्योंकि अविद्या में बुद्धि तथा पुरुष के अत्यन्त अभेद को ग्रहण नहीं किया जाता है। जैसे दूरस्थ दो वनस्पतियों के अत्यन्त अभेदभ्रम की भाँति बुद्धि एवं पुरुष में अत्यन्त अभेद प्रतीति नहीं होती है। यह स्वस्वामिभाव सम्बन्ध से बुद्धि एवं पुरुष में संयोग स्थापित करते हुए सर्ग का कारण बनती है।

राग

सुख का अनुभव करने वाले को सुखानुभव की स्मृतिपूर्वक सुख अथवा सुख के साधनभूत पदार्थ के प्रति जो अभिलाषा अथवा तृष्णा होती है, वह राग क्लेश कहलाता है। अतः सूत्रकार पतञ्जलि ने कहा है कि :–

''सुखानुशयी रागः।''[10]

अर्थात् सुख तथा सुख के साधनमात्र को विषय बनाने वाला क्लेश ही राग है। अतः वार्त्तिक में श्रीविज्ञानभिक्षु ने कहा है कि :–

''सुखानुशयी सुखतत्साधनमात्रविषयको यः क्लेशः स राग इत्यर्थः।''[11]

इस प्रकार सुख का साक्षात्कार होने से तथा सुख का स्मरण होने से राग का उदय होता है। अतः सुख भोग के पश्चात् अन्तःकरण में रहने वाला इच्छाविशेष ही राग है। पदार्थविषयक सुखानुभूति इसकी उत्पत्ति में हेतु है। जो विषय सुख प्रदान करता है, उस पदार्थ के प्रति रागानुबिद्ध होकर मनुष्य की आशा उत्तरोत्तर बढ़ती जाती है। विषयभोगविषयक यह आसक्ति प्राणी को निरतिशय यथार्थ अनुभव से दूर रखता है। इसलिए यह राग क्लेश के रूप से स्वीकृत है।

द्वेष

दुःख का अनुभव करने वाले को दुःखानुभव की स्मृतिपूर्वक दुःख अथवा दुःख के साधनभूत पदार्थ के प्रति जो अभिलाषा अथवा तृष्णा होती है, वह द्वेष नामक क्लेश कहलाता है। अतः सूत्रकार महर्षि पतञ्जलि ने कहा है कि :–

''दुःखानुशयी द्वेषः।''[12]

यह क्लेश पूर्वोक्त क्लेश का विपरीत अर्थ को दिखाने पर भी तात्पर्य यह नहीं है। वस्तुतः द्वेष रागाख्य क्लेश के विरोधी भावात्मक क्लेशहै। न कि राग के अभावमात्र। अभाव के स्वीकार में अन्योऽन्याश्रय दोष की आपत्ति हो जाएगी और सांख्य–योगशास्त्र में जो अभाव की अधिकरण स्वरूपता है, उसकी हानि होगी। यह द्वेष द्रोह, हिंसा आदि को भी उपलक्षित करता है। राग के प्रतिघात होने पर यह क्लेश उत्पन्न होता है। रागाख्य क्लेश के सदृश यह द्वेष भी दुःख तथा दुःख के साधनमात्र को विषय बनाता है। अतः दुःख की अनुभूति के पश्चात् किसी विशेष विषय के प्रति जिस विरुद्ध भाव का उदय होता है, उसे हम द्वेष कह सकते हैं। इस द्वेष निमित्तक जो भी क्रियाएँ होती है, वह हिंसा के रू‍प में स्वीकृत है। यह हिंसा कायिक, वाचिक तथा मानसिक होती हैं। राग सदृश द्वेष के कारण निर्लिप्त आत्मा के साथ अनात्मभूत दुःखसंस्कार का सप्रज्ञान और अकर्त्ता आत्मा में कर्त्तृत्वाभिमान होता है।

अभिनिवेश

सामान्य लोगों की भाँति किसी विद्वान् का जो स्वभावसिद्ध भय उत्पन्न होता है, उसे अभिनिवेश कहते हैं। जैसे मरणनिमित्तक भय। क्योंकि इस संसार में प्रत्येक

व्यक्ति यह जानता है कि जन्म होने के उपरान्त मृत्यु अनिवार्य है। जैसे कि गीता में कहा गया है कि :–

''जातस्य हि ध्रुवं मृत्युं .....।'' (गीता)

अथवा ''उत्पन्नं सत् विनश्यते'।'' इस प्रकारक प्रतीति सामान्य लोगों को होता है। परन्तु जिस प्राणी को ज्ञान प्राप्त हुआ है, उसे भी मरण भय प्राप्त होता है। अतः पतञ्जलि ने कहा है कि :–

''स्वरसवाहीविदुषोऽपि तथा रुढ़ोऽभिनिवेशः।''[12]

अतः विद्वान् तथा मूर्ख दोनों में आत्मविषयिकी इच्छा सदा बलवती है।जैसे :–

''माऽहमभावी, भूवं, भूयासंजीव्यासम्।''

इस प्रकारक अभिलाष को मरणभय कहते हैं। श्रीविज्ञानभिक्षु ने योगवार्त्तिक में एक अन्य उदाहरण प्रस्तुत किया है। जैसे धनादि ऐश्वर्य के नाश से उत्पन्न दुःख का अनुभव करने वाले व्यक्ति में भी धनादि विभवता के प्रति अभिलाषा देखी जाती है कि – मेरा धन नष्ट न हो अपितु सदा अक्षुण्ण रहे। इस प्रकारक आत्मविषयिणी आशीः के द्वारा पूर्वजन्म में अनुभूत मरण दुःखानुभव उसके हेतु रूप से अनुमित होता है।

अब एक प्रश्न उपस्थित होता है कि जब ज्ञानी व्यक्ति को आत्मा की नित्यता सुविदित है, तब इस प्रकारक अनुभव होना असंगत प्रतीत होता है। परन्तु इसके समाधान में यह कहा जा सकता है कि आत्मा की नित्यता के विषय में विद्वान् व्यक्ति को निश्चयात्मक ज्ञान होने पर भी मरणभय जन्य प्रार्थना देखी जाती है। अतः फलबल के आधार पर इस प्रकार की इच्छा के प्रति तादृश संस्कार को उत्तेजक मानना पड़ता है।

निष्कर्ष

अविद्यादि ये पाँचों क्लेश व्याधि आदि की तरह योग में प्रतिबन्ध सृष्टि करते हैं। इन से चित्त विक्षिप्त अवस्था को प्राप्त कर जाता है। अतः ये योग में विरोधी तत्त्व है। इनके तनुत्व होने पर ही विवेकख्याति उत्पन्न होता है। इस प्रकार यह क्रियायोग के दृष्ट एवं अदृष्ट फल के प्रत्यायक होता है। क्रियायोग के अनुष्ठान से चित्तशुद्धि योगी का होता है। और इसके फलस्वरूप अधर्मादि के कारणों की तनुता हो जाने से अविद्यादि भी क्षीणीभाव को प्राप्त हो जाते हैं। क्योंकि अस्मिता, राग, द्वेष आदि के प्राबल्य अवस्था में क्रियायोग सम्भव नहीं हो सकता है। यदि वा कथञ्चित् किसी कारणवश होता भी है तो वह आंशिकमात्र होता है। अतः क्रियायोग अपनी सिद्धि में क्लेशों के तनूकरण का सम्पादन करता है। जिससे साधक क्लेशों के सायुज्य से मुक्त होकर योगमार्ग पर अग्रसर हो जाता है।

अंत टिप्पणी

1. *यो0सू0, 2/3*
2. *व्या0भा0, 2/3*
3. *यो0सू0, 2/5*
4. *यो0वा0 2/5*
5. *छा0उप0, 6/1/1*
6. *यो0सू0, 2/15*
7. *त0वै0, 2/5*
8. *यो0वा0, 2/5*
9. *यो0सू0, 2/6*
10. *यो0सू0, 2/7*
11. *यो0वा0, 2/7*
12. *यो0सू0, 2/8*
13. *यो0सू0, 2/9*